ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2023; 9(2): 16-20
www.allresearchjournal.com
Received: 08-11-2022
Accepted: 13-12-2022

प्रवीन कुमार
सहायक प्रोफेसर, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा, भारत

सविता देवी
सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग टीका राम कॉलेज, सोनीपत, हरियाणा, भारत

कृष्णा देवी
सहायक प्रोफेसर, भूगोल विभाग चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा, भारत

पंकज
सहायक प्रोफेसर, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
प्रवीन कुमार
सहायक प्रोफेसर, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा, भारत

प्रारंभिक काल से मध्य काल तक स्त्रियों की दशा

प्रवीन कुमार, सविता देवी, कृष्णा देवी, पंकज

DOI: https://doi.org/10.22271/allresearch.2023.v9.i2a.10551

सारांश
यह शोध प्राचीनकाल में स्त्री दशा के बारे में विस्तृत जानकारी देने के उद्देश्य से किया गया है। इस शोध के अन्तर्गत प्राचीन समय में स्त्रियों की दशा के साथ–साथ समाज में उनकी स्थिति व स्त्रीयों से संबंधित अनेक बुराईयाँ व प्रचलित विचारों की विस्तृत जानकारी देता है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य स्त्री दशा को जानने के साथ–साथ समाज के प्रचलित कुप्रथाओं को जानना उन्हें जानकर तात्कालीन समाज में उनकी स्थिति में अवगत कराना है।

कूटशब्द : स्त्रीयां, प्राचीनकाल, समाज, प्रथाएं, विचार

प्रस्तावना
लगभग हर मानव समाज में महिलाओं की दुर्दशा यह थी कि वे हमेशा पुरुषों के साथ संबंधों में परिभाषित होती हैं; चाहे वे पुरुषों के समान हों, उनसे भिन्न हों या उनके पूरक हों। पुरुष, पुरुषत्व और पुरुष व्यवहार हमेशा संदर्भ बिंदु होते हैं।[1] इसके अलावा, उन्हें (महिलाओं) को भी पुरुषों पर निर्भर और उनके अधीनस्थ के रूप में परिभाषित किया जाता है। पुरुषों के विशिष्ट माना जाता है, क्योंकि वे सार्वभौमिक और मानव का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि महिलाओं को नजरंदाज किया जाता है दिलचस्प बात यह है कि अधिकांश प्राचीन सभ्यताओं में महिलाओं को अच्छा स्थान मिलता था।[2]

हालाँकि, वर्तमान विषय पर अध्ययन प्राचीन भारत के संबंध में अधिक प्रासंगिक हो जाता है, जिसमें राष्ट्रवादी इतिहासकारों जैसे ए.एस. अल्टेकर[3] और आर.सी. दत्त[4] ने वैदिक भारत में महिलाओं की उच्च स्थिति के बारे में बताया लेकिन बाद में आक्रमणकारियों, विशेषकर मुसलमानों के आने के साथ उनकी स्थिति खराब होती गयी। इसी सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि आक्रमणकारियों ने हिंदू महिलाओं पर अत्याचार किया परिणामस्वरूप पर्दा, सती और कन्या भ्रूण हत्या जैसी बुराइयों को बढ़ावा मिला। लेकिन ऐतिहासिक विश्लेषण से यह बात स्पष्ट होती है कि यह वास्तव में, जेम्स मिल (ब्रिटिश भारत का इतिहास) द्वारा हिंदू सभ्यता को बदनाम करने का राष्ट्रवादी संस्करण था, जिसमें उन्होंने हिंदू महिलाओं की दयनीय स्थिति को दर्शाया था। ए.एस. अल्टेकर जैसे राष्ट्रवादी इतिहासकारों की कमियों को विशेष रूप से उमा चक्रवर्ती ने उजागर किया। उन्होंने कहा है कि राष्ट्रवादी इतिहासकारों द्वारा की गई व्याख्या आर्थिक और सामाजिक कारकों पर आधारित उनके फोकस के विपरीत थी।

विद्वान आर.एस. शर्मा बताते हैं कि विभिन्न कारणों से गुप्तोत्तर काल में शहरीकरण के पतन ने वैकल्पिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। परिणामस्वरूप शहरी जनता, जिसमें मुख्य रूप से कारीगर, और व्यापारी, पुरोहित और प्रशासनिक वर्ग शामिल थे, को अपनी आजीविका के लिए गांवों की ओर पलायन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा।

यह समझाने की आवश्यकता नहीं है कि कृषि आधारित ग्रामीण समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली अपरिहार्य है और एक अध्ययन के तहत भारतीय समाज इसका अपवाद नहीं था। इसके अलावा, आत्मनिर्भरता और कठोर जाति संगठन जैसे सहायक कारक भी उपलब्ध थे, उदाहरण के लिए, नारद[5] और बृहस्पति स्मृति[6] इस पर गवाही देते हैं कि पिता, माता, पुत्र, पुत्री, भाई, चचेरे भाई, संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक ही छत के नीचे रहते हैं और संपत्ति को साझा करते हैं। गौरतलब है कि विदेशियों के आक्रमण से उन्हें जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए संयुक्त परिवार प्रणाली के महत्व को भी समझा। कृत्यकल्पतरु, मिताक्षरा और दयाभाग इसी तरह की गवाही देते हैं कि संयुक्त परिवार प्रणाली उस समय की सामाजिक संरचना में गहरी जड़ें जमा चुकी थी। परिवार

व्यवस्था मजबूत पितृसत्ता द्वारा शासित थी जिसमें पिता का मुखिया होना बहुत गरिमा का विषय था और बड़े बेटे को अनुकूल स्थिति का आनंद मिलता था। कन्या के जन्म का स्वागत नहीं किया जाता था और आमतौर पर शाही और संपन्न परिवारों को छोड़कर लड़कियों को शिक्षा से वंचित कर दिया जाता था।[7] निम्न मध्यम वर्ग के परिवारों में लड़की से घर पर ही शिक्षा प्राप्त करने की अपेक्षा की जाती थी और विवाह के बाद उसके पति को उसका शिक्षक माना जाता था। जहाँ तक पाठ्यक्रम का संबंध था, उन्हें साहित्य, कविता, नृत्य, चित्रकला, चिकित्सा विज्ञान, संगीत आदि का ज्ञान दिया जाता था और अध्ययन के समय उनके और शिक्षक के बीच एक पर्दा लगाया जाता था।

उच्च शिक्षा जो अब विशेष रूप से शाही, कुलीन, संपन्न परिवारों और नृत्य करने वाली लड़कियों के वर्ग तक ही सीमित थी।[8] यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ऐसे परिवार कम संख्या में थे जो अपनी बेटियों की शिक्षा के लिए विशेष शिक्षकों को नियुक्त कर सकते थे। इसके विपरीत सामान्य परिवारों में लड़कियों की शादी लगभग 10 या 11 वर्ष की आयु में हो जाती थी, इसलिए वे शायद ही शिक्षा प्राप्त कर पाती थीं। नारदस्मृति पर आठवीं शताब्दी के टीकाकार महिलाओं के संरक्षण के सिद्धांत को इस आधार पर सही ठहराते हैं कि उचित प्रशिक्षण और शिक्षा का लाभ नहीं होने के कारण उनकी बुद्धि पुरुषों के समान विकसित नहीं होती है। इसी सन्दर्भ में ए.एस. अल्टेकर के अनुसार पुरुषों में साक्षरता की दर 30 प्रतिशत थी जबकि महिलाओं की साक्षरता दर 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होती थी।[9]

शासक परिवारों की लड़कियों ने कुछ सैन्य और प्रशासनिक प्रशिक्षण भी प्राप्त किया, जैसा कि विजय भट्टारिका (चालुक्य वंश के राजा चंद्रादित्य की वरिष्ठ रानी, 7 वीं शताब्दी ईस्वी) के उदाहरणों से प्रमाणित है, जो 7 वीं शताब्दी के मध्य तक बॉम्बे डेक्कन के एक हिस्से पर शासन कर रहे थे।[10] इसी तरह, 786 ईस्वी में, सिलमहादेवी राष्ट्रकूट राजा ध्रुव की ताजपोशी वाली रानी थीं, जिन्होंने अपने अधिकार पर एक भूमि अनुदान दिया था। रेवकनामदी, राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष ५ की बेटी और एरंगना की पत्नी, 837 ईस्वी में एडेटोर जिले की राज्यपाल थीं। ईसा पश्चात सोमेश्वर चालुक्य के एक राजा की पत्नी मलीलादेवी, 1053 ईस्वी में बनवासी के व्यापक प्रांत पर शासन कर रही थी और उसी राजा की एक अन्य रानी केतलादेवी पोनवाद के अग्रहार की राज्यपाल थीं। जयसिंह ष्ष् की एक बड़ी बहन, अक्कादेवी, 1022 ईस्वी में किंसुकड़ जिले पर शासन कर रही थी। विजयादित्य की एक बहन कुमकुमदेवी, कर्नाटक के धारवाड़ जिले के एक प्रांत पर 1077 ईस्वी में शासन कर रही थी।

धार्मिक दृष्टिकोण से महिलाओं को शूद्रों की श्रेणी में रखा गया था क्योंकि अब उन्हें यज्ञों में भाग लेने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। लेकिन अर्ध–ब्राह्मणवादी संप्रदायों जैसे कि शैववाद, वैष्णववाद और तंत्रवाद, आदि ने महिलाओं को एक सम्मानजनक स्थान की अनुमति दी। इसी तरह, पुराण साहित्य में जगदम्बा और जगतजननी शब्द विशेष रूप से उन्हें सौंपे गए थे। अत्रिस्मृति की लेखिका भी उन्हें सर्वश्रेष्ठ शिक्षिका मानती हैं।[11]

बड़ी उम्र की दुल्हन के लिए दूल्हे की अनुपलब्धता की स्थिति से बचने के लिए विवाह संस्था के संबंध में एक महत्वपूर्ण विकास बाल विवाह की शुरुआत थी।[12] मनु स्मृति पर मेधातिथि 9वीं शताब्दी के टीकाकार और 13वीं शताब्दी ई. आदि इसी प्रकार का संकेत देते हुए यह ठहराया गया कि क्षत्रिय वर्ण को छोड़कर सामान्यतः आठ वर्ष की कन्या को तीनों वर्णों में विवाह के योग्य माना जाना चाहिए। चूंकि क्षत्रिय युद्ध गतिविधियों में शामिल रहते थे इसलिए यह ध्यान में रखा जाता था कि वे कम उम्र की लड़की से शादी करने का जोखिम नहीं उठा सकते थे और उसे बचपन में ही बिना बेटे के विधवा नहीं कर सकते थे। लड़कियों के मामले में बाल विवाह में तेजी आयी। हिंदू परिवारों के लिए, एक महिला की शुद्धता का पहलू अपने पति और अपने ससुराल वालों के परिवार के प्रति उसकी अडिग भक्ति पहली और सबसे महत्वपूर्ण बात रही है। हालांकि आक्रमणकारियों और लुटेरों की विभिन्न संस्कृति और जीवन शैली के आगमन पर लड़कियों और महिलाओं की शुद्धता सुरक्षित नहीं रही। वास्तव में, युद्ध बंदियों की घटनाओं और 1000 ईस्वी के बाद से उनके इस्लाम में धर्मांतरण ने इस स्थिति को बढ़ा दिया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिंदू समाज ने उन महिलाओं के प्रति एक आश्चर्यजनक उदासीनता दिखाना शुरू कर दिया। 1200 ईस्वी तक आते–आते स्मृति लेखकों ने भी अपना मत बदल दिया, जो 800 ईस्वी तक यह घोषणा करने पर जोर देते थे कि जिन महिलाओं को जबरन कैद में ले जाया गया या उनका अपमान किया गया, उन्हें उनके परिवारों में वापस भर्ती कराया जाना चाहिए। 40 ऐसे सभी कारकों ने लड़कियों के बाल विवाह मामलो को बढ़ावा दिया।[13]

उपरोक्त कारकों के अलावा, पौराणिक हिंदू धर्म के उदय ने भी महिलाओं की स्थिति में गिरावट का मार्ग प्रशस्त किया। इस नव स्थापित धार्मिक व्यवस्था में अग्निहोत्र के प्रदर्शन सहित विभिन्न वैदिक अनुष्ठानों को देवताओं की पूजा के व्यापक विकास द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। हालांकि, दूसरे विवाह का उद्देश्य संतान प्राप्त करना जारी रहा। यही कारण है कि एक पत्नी के रूप में महिलाओं ने परिवार के भीतर अपनी सम्मानजनक स्थिति को बनाए रखा। पति द्वारा पहली पत्नी का अतिक्रमण अब संपन्न परिवारों में एक आम बात हो गई थी। पति को पहली पत्नी के स्थान पर दूसरी पत्नी लेने का अधिकार था यदि वह बांझ थी या दस साल के इंतजार के बाद भी बेटे को पेश करने में विफल रही थी। इस नियम का पालन करने की अपेक्षा की जाती थी अन्यथा पति, इसके उल्लंघन के मामले में, अदालत में अयोग्य घोषित किया जा सकता था। एक स्वाभिमानी पत्नी जिसे अपने पति के साथ रहना असंभव लगता था दूसरी पत्नी को अपने माता–पिता के साथ रहने की अनुमति दी जा सकती है, बशर्ते कि उसने किसी भी तरह के भरण–पोषण का दावा न किया हो। यदि पत्नी का अपने पति के साथ मतभेद होता है तो उसे अच्छा लगता है और वह उसे घर से निकाल सकता है। इसलिए निष्पक्ष रूप से कहा जा सकता है कि परिवार में पति का वर्चस्व स्थापित हो गया था और पत्नी की स्थिति उसकी अधीनता में परिवर्तित हो रही थी।

सामान्य परिवारों में मोनोगैमी प्रचलित सामान्य विशेषता थी। दयाभाग स्कूल (12वीं शताब्दी ईस्वी सन्) के लेखक ने इस प्रथा का पालन करने का सुझाव भी दिया ताकि परिवार के भीतर संपत्ति के उत्तराधिकार पर विवाद न हो सके। हालाँकि, शासक अभिजात वर्ग के क्षेत्र में बहुविवाह काफी सामान्य था और राजा के साथ–साथ सामंती प्रभुओं ने आम तौर पर बड़े हरम बनाए रखा[14] जैसा कि अरब यात्री सुलेमान ने भी गवाही दी थी।[15] पूर्ववर्ती उम्र में पत्नी को तलाक दिया जा सकता था, लेकिन बढ़ती रूढ़िवादिता के कारण प्रारंभिक मध्ययुगीन काल के दौरान यह स्थगित हो गया।

विधवा का पुनर्विवाह जो पूर्ववर्ती समय में प्रचलित था, अब बाल विधवाओं के मामले में निषिद्ध घोषित कर दिया गया था। जबकि, प्रसार (7 वीं शताब्दी ईस्वी) और नारद (5 वीं शताब्दी ईस्वी) ने वयस्क विधवाओं के मामले में इसका समर्थन किया लेकिन नारद स्मृति पर टीकाकार ने इसे जनमत के विपरीत घोषित किया। जबकि देवना भट्ट (12 वीं शताब्दी में स्मृतिचंद्रिका के पिता) इसकी निंदा करते हुए स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ऐसे मामलों में पुनर्विवाह को मंजूरी देने वाले किसी भी पाठ की उनके समय में कोई प्रयोज्यता नहीं थी। लेखपद्धति, (13वीं शताब्दी ई.) उसी संदर्भ में, यह बताता है कि विवाह का विघटन समाज के निचले वर्ग के बीच असामान्य नहीं था। कल्हण की राजतरंगिणी स्पष्ट रूप से बताती है कि राजा चंद्रपाल की माता एक तलाकशुदा बनिया महिला थी और इस प्रकार कह सकते हैं कि वैश्य परिवारों में कुछ हद तक पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी।

इसी तरह, वास्तुपाल और तेजपाल की माँ एक बाल विधवा थी जब उनके पिता असराजा ने दूसरी शादी की थी।[16] इसके अलावा, हेमचंद्र (12 वीं शताब्दी) के त्रिसस्थिसलकापुरुषचरित में इस तरह के विवाह के खिलाफ विचार होते हैं[17] और अपरार्क (12 वीं शताब्दी ई.) का हवाला देते हुए ब्रह्म पुराण में यह भी चेतावनी दी गई है कि विधवा का पुनर्विवाह करने वाले व्यक्ति का घर हमेशा प्रदूषित रहेगा। मिताक्षरा ने भी उसी तरह उत्तर दिया विधवा विवाह पूरी तरह से निषिद्ध था। हालांकि, यह प्रथा अभी भी अप्रत्यक्ष रूप से समाज में प्रचलित थी।

वैदिक काल से प्रथागत कानूनों द्वारा अनुमोदित नियोग या लेविरेट जिसने एक पुत्रहीन विधवा को अपने देवर या सगोत्र या अपने पति के स्पिंडा या किसी उपयुक्त या उल्लेखनीय व्यक्ति द्वारा अब सास–ससुर द्वारा नियुक्त किए जाने का अवसर प्रदान किया। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इस प्रक्रिया के तहत, उसके मृत पति की संपत्ति स्वयं के साथ–साथ उत्तरजीवी के पास चली गई। इस प्रथा के प्रचलन के कारण भी एक विधवा के साथ कंगाल जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता था। और गर्भ धारण करने पर वह अपने बेटे के वयस्क होने तक संपत्ति पर नियंत्रण हासिल कर लेगी। शास्त्रीय विचारकों में ब्रहस्पति स्मृति (6वीं शताब्दी ईस्वी) के लेखक ने इस प्रथा पर प्रतिबंध लगाने का समर्थन किया था। इसी तरह, विश्वरूप (याज्ञवल्क्य स्मृति पर 9वीं शताब्दी के टीकाकार) ने भी इस प्रथा पर प्रतिबंध लगाने के लिए कहा। हालाँकि, दोनों विचारकों के पास क्षत्रिय और शूद्र राजाओं के संबंध में नरम विचार थे, इसी तरह, 11वीं शताब्दी के याज्ञवल्क्य स्मृति पर टिप्पणीकार विज्ञानेश्वर ने स्पष्ट स्वर में घोषणा की कि उनके समय में नियोग लागू नहीं था क्योंकि जनता की राय ने इसके प्रति नाराजगी दिखाई।

सती प्रथा यानी मृत पति के साथ आत्मदाह करना आम तौर पर राजा हर्षवर्धन के शासनकाल के दौरान एक प्रथा के रूप में विकसित हुआ, जिसकी माँ ने अपने पति को आग की लपटों में आने से पहले चुना। प्रारंभिक मध्ययुगीन काल के दौरान, वास्तव में विधवा रित्रयो के पास दो विकल्प थे या तो आत्मदाह या अपने शेष जीवन के लिए ब्रह्मचारिणी के रूप में जीना।[18] क्योंकि उथल–पुथल की अवधि के दौरान विधवाओं के लिए सुरक्षित रहना आसान नहीं था, खासकर 10वीं शताब्दी के बाद, उन्होंने अधिमानतः बलिदान का रास्ता चुनना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप, लक्ष्मीधर (12वीं शताब्दी) जैसे विचारकों ने अंगिकारा का हवाला देते हुए बताया कि सती प्रथा लगभग विधवाओं के लिए अनिवार्य कर दी गई थी। इस प्रथा ने तेजी से जड़ें जमा लीं, जैसा कि विभिन्न साहित्यिक और साथ ही साथ विभिन्न साहित्य में दर्ज आत्मदाह के मामलों की संख्या से प्रमाणित होता है। इसके अलावा, अगले जन्म में सती महिलाओं द्वारा प्राप्त की जाने वाली धार्मिक योग्यता की धारणा, जैसा कि समकालीन ब्राह्मणवादी या पौराणिक विचारकों द्वारा प्रचारित किया गया था, सती के ऐसे मामलों के विकास में भी जिम्मेदार होगी। उदाहरण के लिए, अपने स्वयं के कथनों में, बृहस्पति जैसे विचारकों ने आत्मदाह करने वाली विधवाओं को सच्ची महिला (सत इस्त्री) माना। इसके विपरीत, हालांकि, बाणभट्ट (7वीं शताब्दी), मेधातिथि (9वीं शताब्दी), देवनभट्ट (12वीं शताब्दी) और मृच्छकटिका (6वीं शताब्दी) के लेखक जैसे कुछ तर्कसंगत विचारकों ने भी विधवाओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण व्यक्त किया और निंदा की कि यह अमानवीय प्रथा है।

परिवार में या सार्वजनिक रूप से महिलाओं के लिए पर्दा या घूंघट मुसलमानों के आगमन तक एक प्रणाली के रूप में नहीं उभरा क्योंकि कोई भी समकालीन साहित्यिक स्रोत इसकी व्यापकता की गवाही नहीं देता है। चीनी यात्री युआन चुआंग (7वीं शताब्दी), अपने लेखों में पर्दा प्रणाली के अभ्यास का कहीं भी उल्लेख नहीं करते हैं। इसी तरह राजतरंगिणी (11वीं शताब्दी ईस्वी) कश्मीर के समाज में पर्दा प्रणाली का उल्लेख नहीं करती है। 10वीं शताब्दी की शुरुआत के एक अरब यात्री अबू ज़ैद ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि भारत में अधिकांश दरबार में रानी बिना किसी पर्दे के सार्वजनिक रूप से दिखाई देती हैं। 6ठी शताब्दी ईस्वी सन् के बाद से दक्कन में भी ऐसा ही प्रतित होता है क्योंकि अजंता की पेंटिंग पर्दा प्रथा की व्यापकता की गवाही नहीं देतीं।[19] आज ऐसा लगता है कि घर कि औरते न केवल घर की सीमाओं में बल्कि जनता के बीच भी खुलकर चलती हैं। जहां तक इस प्रथा की शुरूआत का सवाल था, यह महिलाओं को जिस्म के भूखे मुस्लिम लुटेरों की शैतानी नजरों से बचाने के लिए अभिजात वर्ग में पेश किया गया था। इसके अलावा, ए.एस. अल्टेकर का अवलोकन महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि उत्तर भारत के हिंदू समाज द्वारा लगभग 1200 ईस्वी में पर्दा को आंशिक रूप से अपने विजेता स्वामी के तौर–तरीकों और रीति–रिवाजों की नकल में और आंशिक रूप से उनकी महिलाओं के लिए एक अतिरिक्त सुरक्षा के रूप में स्वीकार किया गया था। ऐसा माना जाता है कि हिंदू सरदारों और रईसों ने भी अपने स्वयं के हरम में अपने अधिपति के उदाहरण का पालन किया। लेकिन दक्कन में, मुस्लिम प्रभाव कम था और इसलिए पर्दा व्यवस्था को वहां समाज में कोई जगह नहीं मिली।

अध्ययन की अवधि के दौरान पहली बार महिला के संपत्ति अधिकार को मान्यता दी गई थी। पिता से अलग होने के अवसर पर उन्हें अपने पिता की आधी संपत्ति की अनुमति दी गई थी, लेकिन उनकी मृत्यु के बाद अपनी संपत्ति का आठवां हिस्सा मांग सकती थी। दयाभाग स्कूल के विचारकों ने सशर्त रूप से उन्हें छोड़ी गई संपत्ति के स्वामित्व का अधिकार दिया। जिनके पिता के मामले में कोई पुरुष उत्तराधिकारी उपलब्ध नहीं था।[20] लेकिन विजनेश्वर (मिताक्षरा के लेखक) ने सिफारिश की कि केवल एक लड़की जो विवाहित थी, गरीब थी और उसका कोई बेटा नहीं था, वह संपत्ति की मालिक हो सकती है। अन्य समकालीन और बाद के विचारकों जैसे अपरारका, देवना भट्ट, चंदेश्वर, वाचस्पति मिश्रा, रघुनंदन, मित्र मिश्रा, आदि ने संपत्ति मामले पर विवाद को सुलझाने के संबंध में विजनेश्वर की सिफारिश का पालन किया। हालांकि, उन्हें केवल एक चौथाई (1/4) की अनुमति दी गई थी। मारुची द्वारा पिता की संपत्ति का, उनके बाद अपरारक ने और कात्यायन ने पुत्र न होने की स्थिति में पिता की पूरी संपत्ति के लिए पुत्र को ही सम्पत्ती का अधिकारी बताया।

सर्वोच्चता के अभाव के कारण प्रशासन की ओर से लगातार ढिलाई, विदेशी आक्रमणों के कारण राजनीतिक अस्थिरता ने कानून और व्यवस्था की स्थिति को खराब कर दिया जिसमें महिलाओं की सुरक्षा और शुद्धता दांव पर थी। नतीजतन, महिलाओं में नैतिक पतन की धारणा को अब पितृसत्ता को मजबूत करने के लिए एक मजबूत उपकरण के रूप में लिया गया। पारंपरिक सामाजिक दायरे में केवल एक निर्मल और आज्ञाकारी महिला ही समझौता करने का विषय थी। और, एक अनैतिक यौन या एक प्रदूषित महिला (किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बलात्कार या गर्भवती हुई) को सैद्धांतिक रूप से नीची दृष्टि से देखा जाता था। उसे तपस्या करनी थी अन्यथा उसका पति उसे छोड़ सकता था। इसके अलावा, सामान्य रूप से समाज के निचले वर्गों और विशेष रूप से महिलाओं (जैसे शैववाद, वैष्णववाद, उनकी विभिन्न शाखाओं के साथ, बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय, जैन धर्म और तांत्रिकवाद) के बीच विधर्मी संप्रदायों के बढ़ते प्रभाव के कारण धार्मिक और सांस्कृतिक अशुद्धता के डर ने मजबूर किया। परिवार और पारंपरिक सामाजिक–धार्मिक व्यवस्था के आदर्शों पर केंद्रित कठोर नियमों के अधिनियमन के लिए शास्त्रीय विचारक मेधातिथि (9वीं शताब्दी), कुल्लुका भट्टा (12वीं शताब्दी), मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर (11वीं शताब्दी), पारासर माधविया में माधवाचार्य (14वीं शताब्दी), सोमदेव (11वीं शताब्दी), देवी भागवत पुराण, बृहस्पति, आदि ने लगातार महिलाओं को उनके माता–पिता, पति और रिश्तेदारों

द्वारा सख्त नियंत्रण रखने की सलाह दी। मेधातिथि ने यह भी चेतावनी दी थी कि यदि परिवार में कोई भी महिला यौन अनैतिकता या परिवार के मानदंडों का उल्लंघन करती हुई पाई जाती है, तो इसके लिए पूरे परिवार को दोषी ठहराया जाना चाहिए। उसी विचारक ने आगे चेतावनी दी कि ऐसी महिलाएं यातनाओं से बचने और खुद पर दोषारोपण करने के कारण अपने पति को जहर भी दे सकती हैं। इसी तरह, एक अन्य विचारक दक्ष ने पुरुषों को अपनी पत्नियों की गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखने के लिए कहा। दूषित और विचलित महिलाओं को कुछ तरीकों से शुद्धिकरण के लिए बहाल किया जा सकता था। उदाहरण के लिए, विजनेश्वर ने वशिष्ठ का अनुसरण करते हुए आश्वासन दिया कि एक द्विज महिला जो शूद्र के साथ यौन संबंध रखती है, लेकिन उससे कोई समस्या नहीं पैदा करती है, उसे तपस्या द्वारा शुद्ध किया जा सकता है। इसी प्रकार व्यास, अत्रि और देवला (600 900 ईस्वी के बीच) ने ऐसी महिला के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया दिखाते हुए कहा कि वह अपने अगले मासिक धर्म के बाद स्वचालित रूप से शुद्ध हो जाएगी। लेकिन अलबरूनी के अनुसार ऐसी महिलाओं को अनुमति देने के लिए कोई रियायत नहीं मिली और उन्हें घर से बाहर का रास्ता दिखाया गया।

भू–अभिजात वर्ग और सामंती राज्यों के विकास ने पूर्व–मौजूदा वेश्यावृत्ति की वृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया, जैसा कि विभिन्न साहित्यिक स्रोतों जैसे कि कुट्टनीमातामा और नीतिवाक्यमृत (10 वीं शताब्दी), आदि के संदर्भों से प्रमाणित है। इस संस्था ने इतनी तेजी से गति प्राप्त की कि राजाओं और सामंतों और कुलीन परिवारों के सदस्यों को विशेष रूप से केवल उन वेश्याओं के साथ संबंध बनाए रखने के लिए कहा गया था जिनकी माताएं वैश्या के तोर पर जानी जाती थी। वास्तव में, वेश्याऔ को राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप के लिए और राज्य के गुप्त मामलों में भी एक साधन की तरह इस्तेमाल किया जाता था। हालांकि ऐसी हाई प्रोफाइल वेश्याएं कम संख्या में थीं और अधिकांश वेश्याएं केवल सेक्स वर्कर के रूप में अपनी आजीविका बनाए रखती थीं। आम तौर पर, वे सामंती प्रशासनिक केंद्रों में रहते थे, जहां उन्हें शहर के दक्षिणी हिस्सों में बसने के लिए कहा जाता था।[21] शाही और कुलीन परिवारों के सदस्यों के अलावा, व्यापारियों, चिकित्सकों, संगीतकारों, बुद्धिजीवियों और मध्यम वर्ग के साथ साथ शराबी लोगों ने इनके सहयोग का आनंद लिया। वेश्यावृत्ति एक संस्था के रूप में इस प्रकार विकसित हुई कि उन्हें बचपन से ही नृत्य, संगीत, गायन, चित्रकला, व्याकरण, खगोल विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में उचित प्रशिक्षण दिया गया।

भुगतान प्राप्त करने के बाद सेवा प्रदान करने से इनकार करने पर विधि या मानदंडों, के उल्लंघन पर ग्राहक और वेश्या के बीच उभरती असहमति या संघर्ष पर, मामले को एक कॉर्पोरेट निकाय (जैसे पंचों) द्वारा अच्छी तरह से सुना और हल किया जाता था। इन निकायों का राजाओं और सामंतों पर भी कुछ प्रभाव था। वास्तव में पूरी व्यवस्था कुछ नियमों के साथ शासित थी, जिसका उल्लंघन दोनों पक्षों को दंड के लिए एक उचित आधार हो सकता है। उदाहरण के लिए, उनके कुछ निश्चित नियमों में से एक वेश्या जो भुगतान प्राप्त करने के बाद ग्राहक के साथ नहीं गई थी, उसे प्राप्त राशि का दोगुना भुगतान करने की आवश्यकता थी। और, यदि कोई ग्राहक सम्बन्धों के मानदंडों का उल्लंघन करता है या उसे नाखून से चोट पहुंचाता या काटने पर उसे दंड के रूप में आठ गुना अधिक राशि का भुगतान करना पड़ता था। जहां तक वेश्या के पास जाकर ग्राहक की शुद्धि का संबंध था, उन्हें इस संदर्भ में तपस्या करने की आवश्यकता थी। एक और प्रमुख विकास देवदासी प्रथा का विकास जिसमें अविवाहित लड़कियों को माता–पिता द्वारा धार्मिक योग्यता के लिए मंदिरों के देवताओं से विवाह करने के लिए दान दिया जाता था, उत्तर में आम तौर पर यह प्रणाली मुल्तान के सूर्य मंदिरों के आसपास विकसित हुई, जैसा कि पहले चीनी यात्री युआन–चुआंग, चीनी यात्री द्वारा लिखा किया गया था, और बाद में अबू जेद अल हुसैन, एक अरब लेखक, साथ ही मुकादसी, एवं सिंध के एक अन्य यात्री, ने सूर्य मंदिरों का उल्लेख किया जहां तक देवदासियों की भौतिकवादी उपयोगिता का संबंध था, अलबरूनी के इस कथन को एक आंख खोलने वाला माना जा सकता है कि वे अविवाहित सैनिकों के सैन्य खर्च और यौन इच्छाओं को पूरा करने में काफी उपयोगी थे। यह लिखाना महत्वपूर्ण है कि 11वीं–12वीं शताब्दी के विभिन्न अभिलेखों से प्रमाणित होने के कारण उनकी संख्या में काफी वृद्धि हुई थी।

इसी तरह, देश के दक्षिणी हिस्सों में देवदासी की प्रथा गहरी जड़ें जमा चुकी थी और व्यापक रूप से फैली हुई थी।[22] इस व्यवस्था को चाहमान शासकों का खुला समर्थन मिला। धीरे–धीरे दक्षिण भारत की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने वाले प्रमुख रूप से बड़ी भूमि सम्पदा रखने वाले मंदिर भी सेक्स केंद्रों में परिवर्तित हो गए। कुलीन वर्ग के लोग और विशेष रूप से पुरोहित एवं ब्राह्मण, देवदासियों के साथ अपनी यौन इच्छा पूरी करते थे।[23]

अध्ययन की अवधि के दौरान ऊपर चर्चा किए गए विभिन्न पहलुओं के अलावा विभिन्न वर्गों से संबंधित महिलाओं की एक अच्छी संख्या को दासीयों में भी बदल दिया गया था। उनकी संख्या, वास्तव में, 11वीं और 12वीं शताब्दी के दौरान मुस्लिम आक्रमणों के कारण तेजी से बढ़ी।[24] पूर्ववर्ती अवधियों की तरह वे अभी भी अपने कार्यों की प्रकृति के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में विभाजित होती रही। उदाहरण के लिए, बंदकी जैसे शब्द[25] , गर्भदासी या जन्मदासी[26] (जन्म से दास) कृतदासी[27] (खरीदा हुआ दास), भयादसी (युद्ध में राजा द्वारा विजय प्राप्त) इसकी गवाही देते हैं। इसी तरह, धात्री या धायमा (अमीर या राजसी परिवारों के बच्चों के पालन–पोषण में लगे हुए), परिचारिका (व्यक्तिगत परिचारक के साथ–साथ संदेशवाहक), घटदासी या कुंभासी (दासों को ले जाने वाले घड़े) प्रियसखी (परिचारिका का मुखिया)[28], द्वारपाली, प्रतिहारी जैसे शब्द, चन्वर्धनिणी, सयानपाली, आदि स्पष्ट करते हैं कि महिला दासों को उनके संबंधित स्वामी/मालकिनों द्वारा विभिन्न प्रकार के घरेलू और गैर–घरेलू कार्यों में तैनात किया गया था। उनमें से कुछ कृषि कार्यों में भी लगे हुए थे और उन्हें भूमि अनुदान के रूप में दान की गई भूमि से जोड़ा गया था। पाइक्कासहस्सेना शब्द से पता चलता है कि कुछ दास महिलाएं जो विशेष रूप से हरम रक्षक थीं, लेकिन कभी–कभी उन्हें फील्ड ड्यूटी भी सौंपी जाती थी और सैनिकों की इकाइयों की कमान संभाली जाती थी। कुछ महिला दासियाँ थीं जो नाइट गार्ड के रूप में भी काम करती थीं और उन्हें बाना के अनुसार यामाचेटिस कहा जाता था। इसके अलावा, सामंती प्रमुखों और कुलीन वर्ग के लोगों ने भी दासियों को उपपत्नी के रूप में रखा था, जिन्हें यौन सुख के लिए अपने स्वामी को खुश करना पड़ता था। मेधातिथि लल्लनजी गोपाल के उद्धरण ने ठीक ही देखा है कि उपपत्नी प्रथा प्रचलित थी और ऐसी दासियाँ दयाभाग में भी दी गई थीं। मिताक्षरा द्वारा दास लड़कियों के लिए संदर्भित अवरुद्ध और भुजिस्या शब्द प्रारंभिक मध्ययुगीन अवधि के दौरान उसी प्रथा की व्यापकता की गवाही देते हैं।

दासियाँ न केवल घरेलू और विलासी जीवन का हिस्सा थीं बल्कि उनके व्यापार ने भी तत्कालीन काल की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनकी बिक्री और खरीद चतुष्पथ (वह स्थान जहां चार सड़कें एक दूसरे को पार करती हैं) पर की जाती थीं। लेखपद्धति (13वीं शताब्दी) और राउरबेला शिलालेख के दस्तावेजों के अनुसार दोनों का निर्यात और आयात किया जाता था।[29] धार (11वीं शताब्दी ईस्वी) के एक शिलालेख से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि कन्नौज, गुजरात, टक्का, गौड़ा, मालवा दास बाजारों के लिए प्रसिद्ध थे।[30] भारतीय दासियों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अरब व्यापारियों के हाथों में था और बसरा दास व्यापार का प्रमुख केंद्र था जहाँ गोरे रंग की अविवाहित युवा लड़कियों को

1000 दीनार से 10000 दीनार के बीच बेचा जाता था। इसलिए, यह उचित रूप से कहा जा सकता है कि महिलाएँ दास प्रारंभिक मध्यकालीन भारतीय समाज के महत्वपूर्ण अंग थे।

पूर्वगामी पृष्ठों में किए गए अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि धार्मिक दृष्टिकोण से महिलाओं को पारंपरिक सामाजिक–धार्मिक क्रम में शूद्रों की श्रेणी में एक समान स्थिति में परिवर्तित कर दिया गया था। इसके विपरीत, अर्ध–ब्राह्मणवादी संप्रदायों जैसे कि शैववाद, वैष्णववाद, और विशेष रूप से तांत्रिकवाद, और महायान बौद्ध धर्म ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सम्मानजनक स्थिति की अनुमति दी। पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार व्यवस्था में उसने लगातार अपनी स्वतंत्र पहचान खो दी। निम्न मध्यम वर्ग के परिवारों में लड़कियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया जाता था। मुस्लिम आक्रमणों की अवधि के दौरान पुराने क्षत्रिय–राजपूत परिवारों को छोड़कर बाल विवाह में तेजी आई। कुलीन परिवारों में बहुविवाह के मामले बढ़े और विधवा पुनर्विवाह सैद्धांतिक रूप से निषिद्ध था। पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में सती प्रथा ने गति पकड़ी और धार्मिक रूप से इसे विधवाओं के लिए सबसे अच्छे विकल्पों में से एक के रूप में पेश किया गया।

चूंकि यह मुसलमानों के आगमन तक एक प्रणाली के रूप में विकसित नहीं हुआ था, लेकिन एक बार मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद हिंदू महिलाओं ने मुस्लिम महिलाओं की नकल करते हुए भी इसे अपनाया ताकि आक्रमणकारियों की शैतानी नजर से सुरक्षित रहे। हालाँकि, पहली बार लाभान्वित होने वाली महिलाओं को अपने पिता के हिस्से से संपत्ति के स्वामित्व का सशर्त अधिकार था, अगर उसकी देखभाल के लिए कोई पुरुष सदस्य नहीं था।

उपरोक्त घटनाओं के अलावा वेश्याओं की संस्था के सुदृढ़ीकरण और त्वरण और देवदासी प्रणाली के विकास ने भी कुछ प्रकार की वेश्यावृत्ति का काम किया, जिससे महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई। इसके अलावा, दासों की संख्या में वृद्धि और उनकी श्रेणियों के विस्तार के साथ–साथ दास व्यापार में प्रगति ने महिलाओं के दुखों को और बढ़ा दिया, जिसमें उन्हें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दास बाजार दोनों में वस्तु के रूप में माना जाता था।

संक्षेप में, एक अर्ध–सामंती ग्रामीण अर्थव्यवस्था के कारण राजनीतिक अस्थिरता और बाद में मुस्लिम आक्रमणों के कारण कानून और व्यवस्था में तबाह हो जाने के साथ–साथ पारंपरिक सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना को आदमी, पुरुषत्व और कठोर पितृसत्ता पर केंद्रित करने के कारण महिलाओं की स्थिति क्रमिक रूप से इस स्तर तक बिगड़ गई कि उनकी पहचान लगभग समाप्त हो गई।

सन्दर्भ

1. मैक्डाल लिन्डा और प्रिगंल रोजमैरी, ''डिफांइनिंग वुमैन : सोशल ईस्टीटुमन एण्ड जैण्डर डिवीजन'', भाग – 1, पृ० सं० 3–7
2. दत्त, आर० सी० (1972), ''द हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन एन्सिएंट इंडिया'', पृ० सं० 171
3. अल्टेकर ए० एस० (2005), ''द पॉजिशन ऑफ वुमैन इन हिन्दु सिविलाइजेशन'', फ्रॉस प्रिरिस्टोरिक टाइम्स टू दा प्रैजेन्ट डे, दिल्ली
4. दत्त, आर० सी० (1972), ''द हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन एन्सिएंट इंडिया'', पृ० सं० 171
5. जोली, जे०, (1889), ''सैकरेड़ बुक्स ऑफ ईस्ट'', भाग – 33, ऑक्सफोर्ड, पृ० सं० 38
6. यादव, बि० एन० एस०, ''ट्रांसलेशन ऑफ बृस्पति सृमति'', पृ० 62
7. सच्चाउ, ई० सी०, (1964), ''अल्बेरूनीस इण्डिया'' भाग – 1, पृ० सं० 181
8. अल्टेकर, ए० एस०, (1968), ''प्राचीन भारतीय सिज्ञण पद्धति'', वाराणसी, पृ० सं० 161
9. अल्टेकर, ए० एस०, (1934), ''एजुकेशन इन ईस्ट इंडिया'', बनारस, पृ० सं० 213–14
10. अल्टेकर, ए० एस०, (1934), ''द पॉजिसन ऑफ वुमैन इन हिन्दु सिविलाइजेशन, पृ० सं० 189
11. जिवानंदा विद्यागरा (1876), ''अतिसमृति'' सम्पादन कलकता, पृ० सं० 151
12. रधुबेन्द्र, पंथारी, ''प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ० 161
13. रॉस, ''द हिन्दु फैमिली इन अरबन सैटिंग, पृ० 246
14. एपिग्राफिया इंण्डिया, 21, पृ० सं० 54/22, पृ० सं० 56
15. यादव, वि० एन० एस०, ''सोसाइटी एण्ड कल्चर ऑफ नार्द्रन इण्डिया इन 12 सैन्चुरि, पृ० सं० 69
16. ताउनेय, सी० एच० (1901), ''प्रबंधचिन्तामणि सम्पादित'', कलकता, पृ० सं० 155
17. जोनसन, एच० एम० (1931–37), ''त्रिसस्तीसलाका पुरूषचरित ऑफ हेमचन्द्र, भाग–3, बड़ोदा, पृ० सं० 87
18. अमंगार, रंगास्वामी, (1941–53), ''कृत्याकल्पत : ऑफ लक्ष्मीधर'' बड़ोदा, पृ० सं० 635
19. आचार्य नारायण रास (1950), ''मृच्छकटिका ऑफ सुह्रक'' सम्पादित, बाम्के, पृ० सं० 10
20. कालबूर्क, एच० टी० (1910), ''दयाभाग का जिमुतवाहन'' सम्पादित, कलकता, पृ० सं० 14
21. पंचारी, आर०, ''अग्निपुराण सहदीकास्टमोद्माय'', सलोका, पृ० सं० 220
22. सी० मिनाक्षी (1977), ''ऐडमिनिस्ट्रेटिन एण्ड सोशल लाईफ अण्डर द पल्लन'', मद्रास, पृ० सं० 117
23. कुमार विजय, ''एन्सिएंट इण्डिन सोसाइटी, कांटिन्यूरी एण्ड चेन्ज'', पृ० सं० 147
24. ललनजी, गोपाल (1965), ''ईकॉनामिक लाईक इन नार्द्रन इंड़िया, वाराणसी'', पृ० सं० 71
25. मजुमदार, आर० सी० (1955), द इज ऑफ इम्पिरियल कन्नौज, मुम्बई, पृ० सं० 68
26. राईडर, ए० डब्लु०, (1937), ''मृच्छकटीकम ऑफ सुदकी'', सम्पादित नारायण राम आचार्य, मुम्बई, पृ० सं० 68
27. शर्मा, आनन्द (1894–1957), ''पदम पुराण'', पुना कलकत्ता, पृ० 71 और 64
28. अग्रवाल, वी० एस० (1953), ''हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन'', पटना, पृ० 98
29. द्विवेदी, एस० पी०, (1988), ''पुर्वमध्यकालीन भारत में दासी'', भाग–1, वाराणसी, पृ० सं० 299
30. यादव, बी० एन० एस०, कलियुग के वर्णन और समाज का प्राचीन काल से मध्यकाल में संक्रमण का इतिहास'', भाग–1, पृ० सं० 44